वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

October - 2024

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

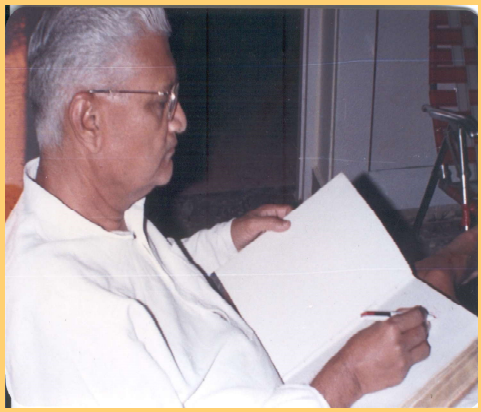

चिंताका एकमात्र इलाज

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

चिंता रहित कोई जीव नहीं है। क्या है कोई भी जीव चिंता रहित? सब लोग चिंता करते ही रहते हैं। सभी जीव- सभी मनुष्यों पर दृष्टिपात करें तो सारे मनुष्य चिंताग्रस्त ही हैं। क्योंकि उन्हें अपने संयोग विषयक चिंतवन चालू ही होता है। 'ऐसा करना है', 'ऐसा किया है',...'अब ऐसा करना है' या वैसा करेंगे... ऐसा किया है, ऐसा करना है और आगे ऐसा करेंगे। ऐसी-ऐसी संयोग सम्बन्धित चिंतासे सारे जगतवासी जीव ग्रसित ही हैं।

अब, ऐसे जगतसे ऊपर उठकर, भिन्न या अलग होकर जो जीव सिद्ध होनेकी राह पर अर्थात् सिद्धालयकी राह पर जब प्रथम भावमें प्रयाण करता है तब जो उसकी दशामें बदलाव आता है उसमें सर्वप्रथम अपने भवभ्रमणकी चिंता उसको होती है। संयोगोंकी चिंता नहीं परन्तु भवभ्रमणकी चिंता होती है कि, अरे..! इस जन्म-मरणके मिटनेका कोई उपाय होगा या नहीं ? कि, बस! इसी प्रकार जन्म-मरण...जन्म-मरण करते ही रहनेका ?

वैसे तो जगतमें सब जीव मानते हैं कि, मृत्यु किसीके बस की बात नहीं। क्योंकि किसीको मरना नहीं है अपितु अनिच्छासे भी उस स्थितिका स्वीकार करना ही पड़ता है। यहाँसे मरनेके पश्चात् कहीं भी जन्म होता है - जो उसके बस की बात नहीं। कहाँ जन्म लेना यह किसी जीवकी इच्छाके अधीन है क्या? जैसे कि मुझे यहाँ से यहाँपर ही जन्म लेना है! ऐसा तो सम्भव नहीं है। यानी परवशतासे कहींपर भी जन्म लेना पड़े और न जाने कैसे-कैसे दुःखोंको भोगना पड़े-इस स्थितिसे बचनेका कोई उपाय है या नहीं? यह चिंता जिसको लगी हो, चिंतित दशामें जीवको कहीं भी नहीं सुहाता ऐसी स्थिति हो। चिंताके वक्त जीवको कहीं भी रुचता नहीं।

यहाँ ऐसे जीवको पूछते हैं कि, क्या तुझे ऐसी चिंता हो रही है? तुझे कहीं नहीं सुहाता है क्या? यदि ऐसी तुम्हारी स्थिति है तो तू जा भीतरमें, तेरे आत्माके परिचयमें! आत्माके स्वभावका परिचय कर, स्वभावका आश्रय कर! वहाँ सुख, शांति, आनंद सबकुछ भरा पड़ा है इसलिये वहाँ तुझे सुहायेगा। तुझे सुहायेगा और तेरी चिंता भी नष्ट हो जायेगी।

भव और भवके कारणके अभावस्वभावरूप तेरा जो आनंदमय तत्त्व है ऐसे आत्मामें जानेसे, उपयोग भीतरमें लगनेसे परिणाममें जो बेचैनी है, अकुलाहट है सो छूट जायेगी। निराकुल शांतिका वेदन होगा। और इसीलिये हम तुझे कहते हैं कि, भीतरमें जा! वहाँ तुझे सुहायेगा और वहाँ तेरा चित्त लगा बस!

(प्रवचनांश...श्री 'अध्यात्म सुधा' भाग - १, पन्ना-८)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५०, अंक-३२२, वर्ष-२६, अक्टूबर-२०२४

श्रावण शुक्ल १०, बुधवार, दि. २७-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका प्रवचन अंश, गाथा-१०६ से १०८ प्रवचन-४५

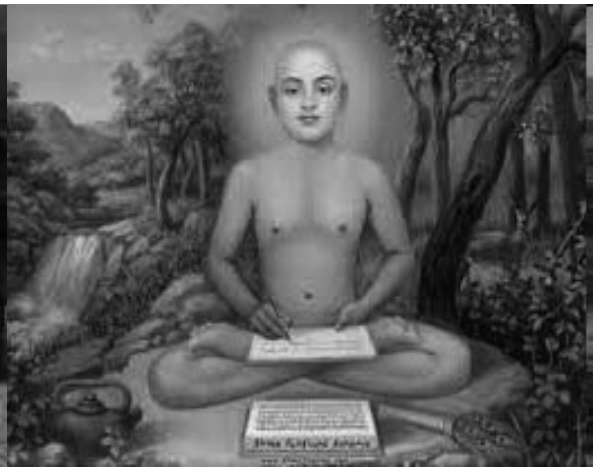

'प्रगट होनेवाले केवलज्ञानोपयोगरूप होकर परिणमित होते हैं; इसलिए उनके समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का अक्रमिक ग्रहण होने से समक्ष संवेदन की (प्रत्यक्ष ज्ञान की) आलम्बनभूत समस्त द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष ही हैं।' भगवान को प्रत्यक्ष है - ऐसा तेरा स्वभाव है, भाई! शक्ति का ऐसा स्वभाव है और व्यक्त होने में वह उसे कारणरूप ग्रहण करके ऊपर पर्याय में, जो ऊपर अल्पज्ञ आदि है, उसे (ज्ञानस्वभाव को) कारणरूप ग्रहण करके एकाकार होने से पर्याय में केवलज्ञान के उपयोगरूप परिणमित हो जाता है। आहा...हा...! सूक्ष्म बहुत इसमें... भाई! वह तो अरूपी है न! अरूपी के लक्षण अरूपी, उसका स्वभाव अरूपी, उसका कार्य अरूपी, कारण अरूपी, उसके गुण अरूपी। समझ में आया?

कहते हैं, **'इस बात को सन्देहरहित जानो।' 'णिभतुं'** भगवान आत्मा के दर्शन से ही मुक्ति को प्राप्त हुए। आत्मा के दर्शन से ही मुक्ति को प्राप्त होंगे, आत्मा के दर्शन से मुक्ति को वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में (पाते हैं)। यह मुनि लिखते हैं, तब पंचम काल के हैं न यहाँ? यहाँ कहाँ केवल (ज्ञान) है? समझ में आया? समझे?

'मोक्ष का उपाय केवलमात्र अपने ही आत्मा का अनुभव है।' लो, दर्शन का अर्थ अनुभव है। मूल अनुभव ही कहना है। **'मोक्ष आत्मा का पूर्ण स्वभाव है।'** मोक्ष आत्मा का पूर्ण स्वभाव है। **'मोक्षमार्ग उसी स्वभाव की श्रद्धा और ज्ञान द्वारा अनुभव है।'** क्या (कहा)? मोक्ष आत्मा का पूर्ण स्वभाव और मोक्षमार्ग **'उसी स्वभाव की....'** स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान द्वारा अनुभव, वह मार्ग है। उस स्वभाव का, पूर्ण स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति अर्थात् चारित्र द्वारा अनुभव (होना), वह अनुभव मोक्ष का मार्ग है। अनुभव मोक्षमार्ग....

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप;

अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।

पर्याय मोक्षस्वरूप कहो। वस्तु मोक्षस्वरूप, त्रिकाल मोक्षस्वरूपी है, मुक्त ही है। परम स्वभावभाव परिणामी मुक्तस्वरूप है। उसे बन्ध कैसा और उसे आवरण कैसा? ऐसे मुक्तस्वभाव की शरण लेकर जो अन्तर अनुभवदशा प्रगट होती है, वह अनुभव - मार्ग पर्याय है। वह पर्याय, मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

'अपना ही आत्मा साध्य है, अपना ही आत्मा साधक है। उपादानकारण ही कार्यरूप हो जाता है।' शुद्ध उपादानस्वभाव स्वयं ही परिणमित होकर पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी कार्य को पा जाता है। भले बीच में संहनन या कुछ भी हो। समझ में आया? वज्रनाराचसंहनन और मनुष्यपना, वह कहीं केवलज्ञान प्राप्त करने के काम में नहीं आता। स्वयं ही शुद्ध भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धस्वभाव, वह अन्तर में एकाकार होकर परिणमता-परिणमता पूर्ण कार्यरूप परिणमित हो जाता है। उपादानकारण, कार्यरूप परिणम जाता है। समझ में आया?

सोने का दृष्टान्त दिया है। **'स्वर्ण स्वयं ही धीरे-धीरे शुद्ध होता है।'** स्वयं ही... पंचास्तिकाय में दृष्टान्त है न! भाई! अग्नि का निमित्त कहा है, बाद में कहा। स्वर्ण स्वयं ही अपने कारण से, उपादान से शुद्ध होता, होता सोलहवान हो जाता है; दूसरा तो निमित्त से कहा। पदार्थ स्वर्ण-सोना स्वयं भी अपनी शुद्धता से परिणमता... परिणमता... परिणमता... परिणमता.... परिणमता सोलहवान हो जाता है। सोलहवान कहते हैं? सोलहवान। अग्नि तो निमित्त है। समझ में आया? **'सोना स्वयं से ही कुन्दन (शुद्ध स्वर्ण) हो जाता है।'**

'इस दशा को आत्मा का दर्शन अथवा आत्मा का साक्षात्कार कहते हैं।' लो! भगवान आत्मा ज्ञान में ज्ञेयरूप भी अभेद आया, श्रद्धा में भी द्रव्य अर्थात् अभेद आया। उसमें स्थिर होना वह अनुभव हुआ, पर्याय। अनुभव, द्रव्य-गुण का नहीं हो सकता, अनुभव, पर्याय का होता है क्योंकि ज्ञान सबका होता है। तीन काल-तीन लोक का (होता है) परन्तु अनुभव तो एक समय की पर्याय का (उसका) ही वेदन होता है। यह वेदन जो आत्मा का अनुभव, वही मोक्ष का मार्ग है। ओ...हो... हो...! व्यवहारवालों को बहुत कठिन पड़ता है। व्यवहार है, भाई! ऐसा कहा न? है, परन्तु उसका लक्ष्य छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर, यहाँ भगवान पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय कर, तभी अनुभव की शुरुआत होती है, तभी मोक्षमार्ग की शुरुआत होती है। समझ में आया?

'आत्मा का दर्शन अथवा आत्मानुभव भी एक सीधी सड़क है, जो मोक्ष के सिद्धमहल तक गयी है।' भई! यह सड़क कहाँ जायेगी? यह सड़क है न कहाँ जायेगी? जाओ, तलहटी तक। पालीताणा की तलहटी तक जायेगी। यह सड़क जाती है न! यह सीमेण्ट कंकरीट की कहाँ जायेगी? जाओ सीधी तलहटी तक। जहाँ शत्रुंजय है, उसकी तलहटी तक जाती है। ऐसे **'आत्मा का दर्शन अथवा आत्मानुभव ही एक सीधी सड़क है, जो मोक्ष के सिद्धमहल तक गयी है।'** मोक्षरूपी प्रासाद - महल तक यह सड़क गयी है। समझ में आया? भगवान वहाँ महाविदेह में विराजमान हैं। ऐसे विराजते हैं ऐसा कहा न? ऐसे विराजते हैं। इस प्रकार सिद्धपने की पर्याय की सीधी सड़क, वह आत्मानुभव का जो अन्तर अनुभव, श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति से करना, वह सीधी सड़क मोक्ष के महल तक जाती है। पूर्ण कार्य तक चली जाती है। पूर्ण कार्य तक वह कारण चला जाता है। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं इसमें? नटूभाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु इसमें।

मुमुक्षु - सड़क की बात समझ में आती है?

उत्तर - यह सड़क की बात है? यह तो दृष्टान्त दिया, यह तो दृष्टान्त। सिद्धान्त सिद्ध करने के लिए दृष्टान्त है, या दृष्टान्त सिद्ध करने के लिए दृष्टान्त है?

भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव परमानन्द की मूर्ति का अनुसरण करके होना - अनुभव - उसे अनुसरण करके होना; राग और निमित्त का अनुसरण छोड़कर पूर्णानन्द स्वभाव का अनुसरण करके होना - ऐसा जो पर्याय में आनन्द और शान्ति का अनुभव, उसमें सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र तीनों ही आ गये। यह सीधी सड़क सिद्ध पद की पर्याय के महल तक पहुँच जाती है। **'दूसरी कोई गली नहीं है।'** ऐसा लिखा है। ऐ... ई...! कोई कहे, यह कहाँ जाये? यह सीधी गली है, दूसरा कोई बीच में (आता है)? तो कहते हैं बीच में कोई नहीं। उलटा-सीधा रास्ता नहीं, सीधी सड़क है। कुछ नहीं, सीधी सड़क है। हमें तो बहुत रास्ता पूछना पड़ता न? जब बाहर निकलते तब। अठारह हजार मील घूमे थे न जब? तब बहुत पूछना पड़ता था (संवत्) २०२० की साल में मोहनभाई पूछे - यह सड़क कहाँ गयी? सीधी (जाती है)। बीच में (कुछ) आयेगा? नहीं, सीधी (जाती है)। आगे जाने पर दो मील दूर एक मार्ग इस ओर से निकलेगा, उसे छोड़ देना - ऐसा कहे। बाकी सीधी चली जाएगी। तुम थे या नहीं, कितनी ही बार? ये भी उसमें थे। कहो, समझ में आया?

'जिस पर चलकर वहाँ पहुँचा जा सकता है, सिद्धपद न तो किसी की भक्ति से मिल सकता है....' यह परमात्मा साक्षात् विराजमान है, उनकी भक्ति से कहीं मुक्ति नहीं है। बीच में यह शुभभाव आये बिना रहता नहीं। वीतराग नहीं हुआ, तब तक पूर्णानन्द के आश्रय की परिणति होने पर भी... ऐसा भक्ति का शुभभाव आता है परन्तु वह सड़क नहीं है। वह बीच में ऐसा भाव अशुभ से बचने के लिए... ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो उस काल में वह शुभ (भाव) आये बिना नहीं रहता। वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया? लो!

'सिद्धपद न तो किसी की भक्ति से मिल सकता है या न बाह्य तप, जप, और चारित्र से मिल सकता है।' बाहर का तप - उपवास आदि या जप - भगवान... भगवान... भगवान... (करना) या व्यवहार पंच महाव्रत के परिणाम आदि, उनसे मुक्ति नहीं मिल सकती है। **'वह तो केवल अपने ही आत्मा के यथार्थ अनुभव से प्राप्त हो सकती है।'** ठीक लिखा है। समझ में आया? फिर वह द्रव्य गुणों का समुदाय है - ऐसा लिखा है। द्रव्य है वह गुण का समुदाय है। **'गुणों में जो परिणमन होता है,'** गुणों में जो परिणमन होता है, **'उसे ही पर्याय कहते हैं।'** समझ में आया?

१५ वीं गाथा में नहीं आया? अपने पण्डितजी थे तब। ज्येष्ठ महीना... पंचास्तिकाय!

भावस्य णत्थि णासो णत्थि अभावस्य चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति।। १५।।

यह चर्चा अपने ज्येष्ठ महीने में बहुत चली थी। २०१३ की साल, ज्येष्ठ महीना। पण्डितजी दस दिन आये थे न? **'गुणपज्जयेसु भावा'** प्रत्येक द्रव्य अपने गुण के पर्याय में **'उप्पादवए भावा पकुव्वंति' 'उप्पादवए भावा पकुव्वंति'** द्रव्य उसके उत्पाद-व्यय को करता है। १५वीं गाथा है। समझ में आया? लो! (फिर) अनन्त गुण का सागर है - ऐसा लेंगे।

मुमुक्षु - उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो ध्रुव परिणमनशील है।

उत्तर - नहीं, नहीं। ध्रुव परिणमनशील नहीं। परम पारिणामिकभाव तो एकरूप सदृश है।

मुमुक्षु - परमपारिणामिकभाव है, उसका परिणमन तो केवलज्ञानरूप भी होता है और मतिश्रुतज्ञानरूप भी होता है।

उत्तर - वह भी होता है। मति श्रुत भी होता है, पहले मति श्रुत आदि होता है, फिर केवलज्ञान होता है। उसका ही परिणमन पर्यायदृष्टि से। द्रव्यदृष्टि से वह ऐसा का ऐसा ही है। द्रव्य से तो परम पारिणामिक ऐसा का ऐसा है। पर्यायदृष्टि से देखो, पर्यायदृष्टि से देखो तो उस ध्रुव का यह उत्पाद-व्यय का परिणमन, वह उसका है। वह पर्यायदृष्टि से देखो तो.... द्रव्यदृष्टि से देखो तो ऐसा का ऐसा है। वह परिणमता नहीं है - द्रव्य परिणमता नहीं है, द्रव्य कूटस्थ है। पर्याय परिणमती है द्रव्य तो कूटस्थ है, अपरिणमन है। द्रव्यस्वभाव (इसलिए तो) सदृश शब्द लिया है न? उसका अर्थ भी सदृश लिया है। ऐसा का ऐसा।

मुमुक्षु - .....

उत्तर - वह कूटस्थ दृष्टि में आया... परिणमनशील

पर्याय में लक्ष्य में आता है। लक्ष्य में पर्याय में आता है परन्तु लक्ष्य में जो चीज आती है, वह अपरिणमनशील है, वस्तु - द्रव्य अपरिणमनशील है परन्तु लक्ष्य में आता है अनित्यपर्याय से... अनित्य परिणमन पर्याय से लक्ष्य में आता है। वह ध्रुव से लक्ष्य में नहीं आता, पर्याय में लक्ष्य से आता है परन्तु लक्ष्य में क्या (आया)? ध्रुव, कूटस्थ है।

मुमुक्षु - पारिणामिकभाव में भी पर्याय है?

उत्तर - गुण है, पर्याय नहीं। गुणरूप त्रिकाल एकरूप। पर्याय तो जो उत्पन्न हुई वह, वह तो पर्यायदृष्टि। गुणस्वरूप ही है, वह तो गुणवान, वाला (ऐसा) भेद भी नहीं है, गुणस्वरूप ही है।

यहाँ तो यह चीज है, यह एकरूप ध्रुव, एकरूप ध्रुव। वास्तव में तो निश्चय का स्वरूप ही ध्रुव है। यह तो पर्याय है, उत्पाद-व्यय यह सब व्यवहार का विषय है, परन्तु है। दूसरे प्रकार यदि कहें तो यह पारिणामिक है, उसकी ही यह पर्याय है परन्तु यह व्यवहारनय की अपेक्षा से। पारिणामिकस्वभाव है, वह तो निश्चय से एकरूप त्रिकाल, एकरूप त्रिकाल, कम नहीं, विशेष नहीं, परिणमन नहीं, भेद नहीं, परन्तु जो लक्ष्य करनेवाला है, वह पर्याय है। पर्याय से लक्ष्य होता है। करना किसका? उस द्रव्य का। करे कौन? पर्याय। ध्रुव तो लक्ष्य करता नहीं, ध्रुव तो एकरूप है। पर्याय का जो अनुभव है, वह 'यह द्रव्य सामान्य है' - ऐसा निर्णय करता है। समझ में आया?

'आत्मा पूर्ण ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, चारित्र आदि शुद्ध गुणों का सागर है।' लो! विशेष लिया है। **'चौथे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में आत्मा का अनुभव शुरु हो जाता है।'** इस ओर है, भाई! **'वह दूज के चन्द्रमा समान....'** यह परमात्मप्रकाश में डाला है भाई ने - दौलतरामजी ने। परमात्मप्रकाश में है। जैसे दूज का चन्द्रमा होता है, उतना अनुभव चौथे से थोड़ा (शुरु) हो जाता है, वह बढ़ते-बढ़ते पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। यह सब पर्यायें हैं, ध्रुव तो ऐसा का ऐसा है, वह है। उसमें कहीं कम ज्यादा होता है - ऐसा है नहीं। केवलज्ञान हो तो वहाँ पर्याय शक्ति कम है और मतिज्ञान हुआ अनन्तवें भाग में तो वहाँ शक्ति अधिक है - ऐसा कुछ है नहीं। वह तो एकरूप त्रिकाल एकरूप है।

उस दिन भाई ने कहा, नहीं? उसमें अपने नहीं, लब्धित्रय में। अकलंकदेव! गुण का लक्षण सदृशता। वह वस्तु कायम एकरूप सदृश... सदृश... सदृश... सदृश... सदृश... उत्पाद-व्यय हैं, वह विसदृश है। सदृश से उल्टा दूसरा विसदृश अर्थात् भाव-अभाव, भाव-अभाव, उत्पाद वह भाव, व्यय वह अभाव। भाव-अभाव। वह भाव-भाव एकरूप सदृशभाव, एकरूप सदृशभाव, यह विसदृशभाव। विसदृश, वह व्यवहारनय का विषय, सदृश वह निश्चयनय का विषय। दोनों एक साथ कहो तो प्रमाण का विषय हो गया। समझ में आया? वस्तु ही ऐसी है, वहाँ उसमें की किसने है? वस्तु ही ऐसी अनादि की चीज है। समझ में आया?

चन्द्रमा के समान है। लो! यह **'उसी आत्मानुभव के सतत अभ्यास से पाँचवें गुणस्थान के योग्य....'** आगे बढ़.जाता है - ऐसा कहते हैं। **'आत्मानुभव को ही धर्मध्यान कहते हैं।'** धर्मध्यान कोई दूसरी चीज नहीं है। आत्मानुभव, वह धर्मध्यान है। धर्म अर्थात् त्रिकाली स्वभाव, उसका ध्यान - एकाग्रता (होना), वह तो आत्मा का अनुभव, धर्म, वह धर्मध्यान है। दूसरे कहते हैं, शुभयोग, धर्मध्यान है। अरे...! भगवान! अद्भुत बात।

एक बार नहीं कहा था? भद्र, पण्डितजी! पण्डितजी को पता है। (एक व्यक्ति कहता था) सम्यक्त्वी को धर्मध्यान नहीं है, भद्र ध्यान है। वह कहा था न? परन्तु भद्र भले आवे परन्तु उसका अर्थ क्या? ऐसा नहीं। वह तो भद्र अर्थात् सरल - सीधा ध्यान। धर्मध्यान उग्ररूप से वह शुक्लध्यान है। यह अभी एकदम उग्र नहीं है। आहा...हा...! शुक्लध्यान, ऐसा लिखा है और **'कषाय मल अधिक दूर....'** होने से शुक्लध्यान होता है। **'यह मोक्षमार्ग वर्तमान में भी....'** अपने सार-सार लेते हैं, (बाकी दूसरा) बहुत अधिक लिखा है। **'भविष्य में अनन्त सुख का कारण है।'**

मोक्षमार्ग तो वर्तमान आनन्द है। आनन्द है, दु:ख कैसा? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्वभाव पूर्ण है, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान, और रमणता, यह तीनों आनन्दमूर्ति हैं। सम्यग्दर्शन, आनन्दरूप है; ज्ञान, आनन्दरूप है और चारित्र, आनन्दरूप है। मोक्षमार्ग वर्तमान आनन्ददाता है (और) भविष्य में पूर्ण आनन्द का दाता है। समझ में आया? अनन्त सुख का कारण है।

मुमुक्षु को व्यवहार धर्म का बाह्य... यह कुछ नहीं, इसमें गड़बड़ है। थोड़ी गड़बड़ कहीं डाल देते हैं। निमित्त की तो गड़बड़ डाल देते हैं। निमित्त है न! लो! अब अन्तिम श्लोक, अन्तिम श्लोक, लो! आज पूरा होता है। ज्येष्ठ कृष्ण ३ से शुरु किया था। चिमनभाई के वास्तु में, शान्तिभाई तुम्हारे (वहाँ) वास्तु था न, उस दिन ज्येष्ठ कृष्ण ३, वार सोमवार था न? सोमवार, ज्येष्ठ कृष्ण ३ सोमवार को वहाँ शुरु किया था। वास्तु (था), नया मकान (बनाया)। आज अब पूरा होता है।

ग्रन्थकर्ता की अन्तिम भावना
संसारह भय-भीयएण जोगिचन्द्र मुणिएण।
अप्पा-संवोहण कया दोहा इकक-मणेण।। १०८।।
भव भीति जिनके हृदय, 'योगीन्दु' मुनिराज।
एक चित्त हो पद रचे, निज सम्बोधन काज।।

अन्वयार्थ - (संसारह भय-भीयएण) संसार के भ्रमण से भयभीत (जोगिचंद-मुणिएण) योगिचन्द्राचार्य मुनि ने (अप्पासंवोहण) आत्मा को समझाने के लिए (इक्क-मणेण) एकाग्रचित्त से (दोहा कया) इन दोहों की रचना की है।

ग्रन्थकर्ता की अन्तिम भावना।
संसारह भय-भीयएण जोगिचन्द्र मुणिएण।
अप्पा-संवोहण कया दोहा इकक-मणेण।। १०८।।

पहले शुरुआत में ऐसा कहा था कि जो भवभीरु जीव है, उनके लिए मैं बनाता हूँ। यहाँ स्वयं (कहते हैं) मैं अपने आत्मा के लिए, सम्बोधन के लिए, मैंने मेरी भावना की एकाग्रता के लिए (रचना की है)। जैसे नियमसार में कहा न प्रभु ने? कुन्दकुन्दाचार्य ने **'णियभावणाणिमित्तं मए कदं'** मेरी भावना के लिए मैंने यह कहा है, भाई! ऐसे ही यहाँ आचार्य स्वयं कहते हैं कि **'अप्पा-संवोहण कया'** - मेरी आत्मा को मैंने सम्बोधन किया है, भाई! हे आत्मा! तू परमानन्द की मूर्ति है, उसमें स्थिर हो, उसमें स्थिर हो, उसमें स्थिर हो। दृष्टि और ज्ञान हुआ है परन्तु उसमें अब स्थिर हो। ऐसे सम्बोधन के कारण मैंने यह रचा है। समझ में आया?

'संसार के भ्रमण से भयभीत....' अरे! चार गति का भव (उसका) भय, जिसे भय लगा हो... समझ में आया? उसके लिए कहते हैं। चार गति का डर लगा है। आहा...हा...! पराधीनता, दु:खरूप दशा। स्वर्ग का भव भी दु:खरूप पराधीन है। चार गति ली है, हाँ! (मात्र) दु:ख ऐसा नहीं, दु:ख से डरे ऐसा नहीं। संसारह भय-भीयएण 'संसार' शब्द से चार गति। अकेला दु:ख और उकताहट, वह तो द्वेष है। उसमें तो इसे सुख की, स्वर्ग की इच्छा है।

*

(शेष प्रवचन अगले अंकमें..)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (अक्टूबर-२०२४, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
१) श्रीमती शारदाबेन चंदुलाल पारेख, मुंबई और
२) डॉ. महेशभाई जयंतिलाल महेता, मुंबई
की ओर से ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है। अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईका दि. ०७-०८-९८ कोलकातामें हुआ प्रवचन

पत्रांक - १०३

बंबई, माघ, १९४६

कुटुंबरूपी काजलकी कोठरीमें रहनेसे संसार बढ़ता है। चाहे जितना उसका सुधार करें; तो भी एकांतवाससे जितना संसार क्षय होनेवाला है उसका सौवाँ हिस्सा भी उस काजलगृहमें रहनेसे नहीं होनेवाला है। वह कषायका निमित्त है; मोहके रहनेका अनादिकालीन पर्वत है। वह प्रत्येक अंतर गुफामें जाज्वल्यमान है। सुधार करते हुए कदाचित् श्राद्धोत्पत्ति होना संभव है, इसलिये वह अल्पभाषी होना, अल्पहासी होना, अल्प परिचयी होना, अल्पसत्कारी होना, अल्पभावना बताना, अल्प सहचारी होना, अल्पगुरु होना, परिणामका विचार करना, यही श्रेयस्कर है।

(गतांकसे आगे..)

हमने एक दृष्टांत लिया कि, बाहरमें प्रतिकूलता हो, कुटुंबियों तो प्रतिकूलता देते हैं फिर भी भीतरमें (मोहकी) परिणति ढीली तक नहीं होती। बाहरमें तो आमने-सामने द्वेष कर लेगा। कुटुंबका सभ्य द्वेष करे तो खुद भी सामने द्वेष कर लेता है। लेकिन फिर भी भीतरमें जो अपनत्वकी परिणति है, इसकी खुदके आत्मा पर कितनी पकड़ है! इसकी खुदको खबर नहीं है और उसमेंसे वह छूट नहीं सकता। वह (सामने) द्वेष कर लेता है लेकिन रागकी परिणति मिट जाती है क्या! क्योंकि द्वेष तो उदय आया उस वक्त क्षणिक कर लिया। कोई द्वेषका प्रसंग खड़ा होने पर क्षणिक द्वेष तो कर लिया, लेकिन (फिर भी उसके प्रति रागकी) परिणति जमी हुई है और वह समझमें नहीं आती, दिखाई नहीं देती; इसलिये इसे दूर करनेका जीवको विचार भी नहीं आता, फिर प्रयत्नमें तो आये ही कहाँसे? अभी तो विचारमें भी नहीं आता, तो प्रयत्नमें तो आये ही कहाँसे?

कल रातके स्वाध्यायमें हमारा परिणतिके विषय पर स्वाध्याय चला था, वह चीज़ ही ऐसी है। रस ले-लेकरके वह परिणति बन चुकी होती है, इतना रस लिया रहता है! एक छः - आठ महिनेके बच्चेको देखते हैं तो वह भी अपनी माँ का हाथ पहचान लेता है। उसको दूसरा कोई उठाये और (उसकी माँ) उसको उठाये, दोनोंमें उसके परिणाममें फर्क पड़ता है! अपनी माँ को देखते ही हँसने लगेगा, उठानेकी तो क्या बात करे! दूसरेकी गोदमें हो और सामनेसे माँ को आते हुए देखे तो हँसने लगेगा! इस तरह छः-छः महिनेकी आयुष्यकी अवस्थामें इतना अपनत्वका रस लिया रहता है! उसको भाषा नहीं आती कि, 'ये मेरी माँ', ऐसा स्पष्ट विकल्प नहीं है कि, 'ये मेरी माँ' उसे अस्पष्ट भाव है कि, 'ये मेरी माँ', लेकिन रस कितना पड़ा है! (अनन्तकालके बाद) जब विचार करनेका वक्त आये, सत्पुरुषके वचनामृत सामने आये, मालूम पड़े कि ये (ममत्व) नरक, निगोदका हेतु है, मुझे ये कारण छोड़ना होगा, लेकिन भीतरमें कितना (विपरीत

ग्रहण) करके बैठा है, इसकी खुदको खबर नहीं होती। इसकी परिणति कितनी (गाढ़) हो चुकी है, यह खबर नहीं होती। द्वेष करने पर भी रागकी परिणति नहीं छूटती है, बोलिये! उसे (छोड़नेका) पुरुषार्थ करे तब ही समझमें आ सकता है कि, इसमें कितना पसीना छूट जाये ऐसा है।

बहुत सुगम-सरल उपाय (यह है कि), अगर कोई ज्ञानीपुरुष उसे मिल जाये और उनके प्रति अपनत्व-अभेदभाव हो जाये, अभिन्नबुद्धि (हो जाये तो अपनत्व मिट जाये)। ४७० पत्रमें अभिन्नबुद्धि कहा न! **'ज्ञानीपुरुषके प्रति अभिन्नबुद्धि हो, यह कल्याणका महान निश्चय है,...'** ऐसा लिया है। (इस पत्रमें) सिद्धांत लिया है। यह अपनत्व हो जाये तो वहाँ (कुटुंबमेंसे) विरक्त होनेमें देर नहीं लगेगी। सहजमात्रमें विरक्त हो जायेगा। क्योंकि (सत्पुरुषकी) परिणति होकर उसका रस शुरू हो गया, तो (दूसरा) रस छूट जायेगा। (इस तरफका) वजन ही इतना आता है कि, (दूसरी ओरका) परिणतिका पलड़ा उछल जायेगा।

अत: कृपाल्देवने सत्पुरुषका विषय यहाँ मुख्य किया है, इसका कारण यह है कि दूसरे किसी भी प्रकारसे (अपनत्व) छोड़ने जायेगा तो उसे पसीना आ जाये ऐसा है। क्योंकि ऐसे-ऐसे उदय आते हैं, ऐसे-ऐसे प्रसंग बनते हैं, जिसमें कुटुंब प्रतिबंधकी जो परिणति होती है वह फिरसे दृढ़ हो जाती है। बार-बार बह जाता है। थोड़ा-बहुत विचार करके पतला हुआ हो वह फिरसे गाढ़ हो जाता है। सत्संगका थोड़ा असर आया हो उसे धुल जानेमें देर नहीं लगती। एक उदय (ऐसा) आ जाये कि सब धुल जाता है। इस तरह (प्रतिबंध छोड़नेका) विषय बहुत कठिन भी है और एक तरफसे देखे तो बहुत सुगम भी है - परन्तु जब (ज्ञानीपुरुषके प्रति) अभिन्नबुद्धि आये तब, वरना नहीं।

इसमें बनता है क्या कि, जीवको जब वास्तवमें संसारसे मुक्त होनेकी भावना हुई हो, बहुत ईमानदारीसे ये बात हो कि, अब वास्तवमें मुझे छूट ही जाना है, किसी भी कीमत पर छूट ही जाना है, ऐसा अभिप्राय हो चुका हो, फिर जब उसे छूटनेके कारणभूत ऐसे सत्पुरुष मिलते हैं, तब उसे ऐसा लगता है कि, 'बस! मैं जिस दु:खके समुद्रमें डूब रहा था, इसमेंसे बचनेके लिये मुझे नाव मिल गयी। मैं अब इसमें बैठ जाऊँ!' फिर उसे किनारा समीप दिखता है। वरना तो किनारा १५ फीट दूर हो तो भी डूब जाता है। तिरैया हो वह भी १५ फीट तक तैर नहीं सकता क्योंकि (पानीका) प्रवाह ऐसा होता है कि, उसे खींच जाता है। (परन्तु सत्पुरुष मिलनेके) बाद उसे प्रतीति आ जाती है कि, 'अब मैं तिर गया!' फिर वह नावको इस तरह पकड़ लेगा कि किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ेगा! यानी कि उस तरफकी पकड़ इतनी मजबूत आती है कि, (संसार)की पकड़ छूट जाती है, ऐसा होता है। एक तरफ झुकाव बढ़ जानेसे दूसरी ओरका झुकाव कम हो जाता है या मिट जाता है। ऐसा प्रकार (बनता) है।

(यहाँ क्या कहते हैं)? **'वह प्रत्येक अंतरगुफामें जाज्वल्यमान है।'** क्या (जाज्वल्यमान है)? मोह। प्रत्येक अंतरगुफामें भीतरके परिणामोंकी परिणति बहुत गाढ़ की हुई है। वह सब जमा हुआ है, (ऐसा कहते हैं)। जाज्वल्यमान माने क्या? कि, वह बलवान है। बहुत बलवान है। यानी कि भीतरकी गुफामें वह बहुत प्रज्वलित है, ऐसा कहना चाहते हैं। बाहरमें कोई थोड़ा भी त्याग करे तो इसमें ऐसा नहीं समझना कि, उसे कुटुंब प्रतिबंध छूट गया है। बहुतसे लोग तो कुटुंब छोड़कर देशत्यागी या सर्वत्यागी हो गये। वैसे तो बहुतसे लोग कुटुंब छोड़ते हैं परन्तु इसका अर्थ ये नहीं कि, उसने कुटुंब प्रतिबंध छोड़ा है। पहले प्रतिबंध छूटना चाहिये फिर बाह्य त्याग करे तो अच्छा! बाह्य त्याग करनेसे प्रतिबंध छुटता है, ऐसा नहीं है। अपनत्व

छोड़ना (चाहिये)। जीव कहीं न कहीं तो अपनत्व करेगा ही। या तो श्रीगुरुमें या तो स्वरूपमें, वरना अनादिसे जो परमें अपनत्व है वह तो इतना गाढ़ हो चुका है कि, वह जल्दीसे छूटे ऐसा नहीं है। उसे छोड़नेके लिये अविधिसे झूठे प्रयत्न करे, झूठे प्रयोग करे या झूठे त्यागके प्रयोग करे, इससे कोई छूटा नहीं जाता। खुदने अनंतबार जिनदीक्षा ली है। इस जीवने भी अनंतबार जिनदीक्षा ली है। **'यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो'** वैराग्यमें आकर दीक्षा ली है! (लेकिन) वह वैराग्य अल्पजीवी होता है।

काम पद्धतिसे ही होता है। कामको कामकी पद्धतिसे नहीं किया जाये तो काम बिगड़ेगा, बिगड़ेगा और अवश्य बिगड़ेगा ही। हलवा, हलवाकी पद्धतिसे ही होता है। रोटी, रोटीकी पद्धतिसे ही बनती है। दूसरी रीतसे बनाने जाये तो बिगड़ता है। रीत बदलने पर बिगड़ता ही है। कृपालुदेव ऐसा क्यों कहते हैं? कि, ज्ञानीके मार्ग पर चलना। उन्होंने सोभागभाईमें बड़ा गुण कौनसा देखा? **'...ज्ञानीके मार्गके प्रति उनका अद्‌भुत निश्चय वारंवार स्मृतिमें आया करता है।'** मतलब उनकी अनुपस्थितिमें वह स्मरणमें आता है कि, यह कैसा जीव था! मुमुक्षुकी भूमिकामें यह कैसा जीव था! (उनका) अद्‌भुत निश्चय था कि, ज्ञानीके मार्ग पर ही चलना है। ऐसे जीवको स्वच्छंद तो पहले ही जाता है। ज्ञानीकी आज्ञामें आया कि, (स्वच्छंद पहले ही जायेगा)। स्वच्छंद तो संसारमें भटकनेके लिये बहुत बड़ा दोष है। वह स्वच्छंद तो सर्वप्रथम ही छूट जाता है! फिर प्रतिबंध छूटता है। परंतु यह प्रतिबंध ज्ञानीकी आज्ञामें रहे तो छूटना आसान है। (लेकिन) आज्ञामें रहना भी आसान नहीं है!! क्योंकि उसे अपनी सब बात छोड़ देनी होगी। उसे अपनी सब बात छोड़ देनेकी बात आयेगी, तब आज्ञामें रह सकेगा।

ज्ञानी ऐसा कहे कि, कुटुंबका प्रतिबंध छोड़! (कि इधर मुमुक्षु प्रतिबंध छोड़नेके लिये) तैयार ही हो!! (ज्ञानीपुरुष) प्रकृति (छोड़नेका कहे तो)? (क्योंकि) प्रकृतिका ऐसा है कि, भीतरमें उदय आनेपर सावधान होवे इसके पहले तो ज़ोरसे जुड़ जाता है। जीवको ऐसे परिणाम जो हो जाते हैं, वह कैसे छूटे ? कि, ज्ञानीकी आज्ञामें रहे तो छूट जाये। क्योंकि उसे इतनी जागृति आती है, इतनी निर्मलता आती है, और इतनी सावधानी आती है कि, वह सब छोड़नेके लिये तैयार होता है। प्रकृति छोड़नेके लिये भी तैयार होता है। वरना प्राण और प्रकृति साथ ही जाये, इतनी दृढ़ होती है।

'सुधार करते हुए कदाचित् श्राद्धोत्पत्ति होना संभव है,...' श्राद्ध माने श्रावकधर्म और उत्पत्ति अर्थात् प्रगटता। अत: ये ऊपरकी भूमिकाकी बात ली है। श्रावकधर्ममें तो आ जाना चाहिये। पंचम गुणस्थानमें तो उसे आ जाना चाहिये। कुटुंब छोड़कर एकांतवासमें जाना है न? इसलिये (ऐसा कहा)। **'इसलिये वहाँ अल्पभाषी होना,...'** वह माने कुटुंबमें कम बोलना, ऐसा कहते हैं। कुटुंबमें ज्यादा बोलना कब होता है? रस होता है तब। रस कम होने पर बोलना कम हो जाता है। अथवा जो जीव अंतरमें अपने पुरुषार्थमें और प्रयत्नमें एकलयसे, एकनिष्ठासे और एकलयसे सतत लगा रहे, उसकी दूसरी प्रवृत्ति कम हो ही जायेगी न! बोलना कम हो जायेगा। (वैसे) अल्पभाषी होना। जितना रस लेकर तू ज्यादा बोलेगा उतना प्रतिबंध दृढ़ होनेवाला है।

लोकाचार तो ऐसा है कि, लड़का स्कुलसे आये तब उसके साथ बोलना चाहिये, नहीं बुलाने पर उसे बुरा लगेगा, 'पापा! आप क्यों कुछ बोलते नहीं? घरमें भी आप अगर नहीं बोलेंगे तो (कैसे चलेगा)? (आप तो) कुछ बोलते ही नहीं हो। ऐसा थोड़ी न

चलता है?' इसमें बहुतसी बातें सामने आयेगी। **'अल्पभाषी होना'** - इसमें बहुतसी बातें सामने आयेगी। लेकिन जो अपने काममें लगा हो उसे सामनेवालेको क्या लगेगा? यह बात कम हो जाती है। जब तक अभिप्रायमें सामनेवालेको कैसा लगेगा? यह बात मौजूद है तब तक वह प्रतिबंध छोड़ ही नहीं सकता। कुटुंबियों तो ऐसा कहेंगे कि, 'आपका धर्म बहुत स्वार्थका है। हमें कैसा लग रहा है, यह आपको देखना ही नहीं इसका मतलब कि आपको सिर्फ अपना स्वार्थ ही देखना है।' लगेका कि नहीं लगेका? 'ऐसा तो कोई धर्म होता है क्या? बस! सिर्फ अपना स्वार्थ देखे, दूसरेका तो कुछ देखे ही नहीं। सामनेवालेका क्या होगा ये देखे ही नहीं।' ऐसा है। स्वार्थ तो जरूर है लेकिन दूसरेके साथ व्यवहारमें असद्व्यवहार करनेका सवाल नहीं रहता। सद्व्यवहार होता है। व्यवहारके स्थानमें सद्व्यवहार रखता है, परन्तु खुद भीतरसे एकाकार नहीं होता। भीतरमें मिठास आ गई तो बात खतम! तो लुट जायेगा! भीतरसे भिन्न रहना चाहिये, फिर बाहरमें जो व्यवहारिक फर्ज है, वह तो एक नौकर भी निभाता है तो उसे खुद निभायें उसमें कहाँ बड़ी बात है? ममत्व अलग चीज है, व्यवहार अलग चीज है। ममत्वमें आ गया तो प्रतिबंध नहीं छूटेगा। व्यवहार करनेमें कोई प्रतिबंधका सवाल नहीं है। (प्रतिबंध) छोड़ना मुश्किल लगेगा; लेकिन मुश्किल लगने पर भी एक बार तो (ढीला) होना चाहिये, करना होगा। इसके लिये कुछएक फेरफार होनेपर मुमुक्षु अल्पभाषी होता है - कम बोले, ऐसा बनना संभवित है। (बिलकुल) नहीं बोले सो बात नहीं, परन्तु कम बोले, जरूरत जितना बोले, काम हो उतना बोले। इतनी बात है।

'इसलिये वहाँ अल्पभाषी होना,...' यानी कि बोलनेमें ज्यादा भाव नहीं दर्शाये। (यानी कि) जो आये हो उसके साथ ज्यादा बोलकर उसे अच्छा दिखाने जाये, ऐसा कुछ नहीं करे - मर्यादा कर दे। जरूरत जितना - काम हो उतनी बात करनी है, बाकी मुझे मेरे काममें लगा रहना है।

'अल्पहासी होना...' (आत्महितकी) गंभीरता आने पर सहज ही अल्पहासी (हो जाता है)। हँसना यह एक अगंभीर प्रवृत्ति है। परिणामकी जो प्रवृत्ति है उसमें अगंभीरताके कारण हँसना होता है। गंभीरतामें वह बात नहीं रहती। जब खुद अपने काममें लगता है (तब उसे ऐसा लगता है कि मैंने) बहुत बड़ा काम हाथमें लिया है। बहुत बड़ा माने? जगतमें इससे (अधिक) बड़ा कोई काम है ही नहीं, इतना बड़ा काम हाथमें लिया है। निर्वाणपद जिसको लेना है, पूर्णताका लक्ष जिसने बाँधा है, दृढ़ मुमुक्षुता है - उसने कितने बड़े कामकी जिम्मेदारी ली है! तो इसके अनुपातमें इसकी गंभीरता आती है। अत: उम्र चाहे कितनी भी हो लेकिन यह समझ ऐसी है कि, जिसमें maturity बहुत आती है। वरना आदमी अगंभीर परिस्थितिमें बात-बातमें हँस लेता है! maturity नहीं रहती। इसमें तो वह भी साथ-साथ आ जाती है। गंभीरता आनेके साथ-साथ परिपक्वता बहुत आ जाती है। यह **'...अल्पहासी होना,...'** (का भाव है)।

'...अल्प परिचयी होना,...' अर्थात् परिचय कम कर देना। सगे-संबंधियोंमें, मित्रोंमें, समाजमें - जितने संबंध हैं (उन लोगोंका परिचय कम कर देना)। संसारमें लोग संबंध बढ़ानेके अभिप्रायवाले होते हैं। क्योंकि दोनोंकी पूरी line ही विरुद्ध है। अत: जहाँ परिचय बढ़े ऐसे प्रसंग हो वहाँ खुद गैरहाज़िर हो जाये, गैरहाज़िर रहे। इससे सामनेवालेको बुरा भी लग सकता है परन्तु हमें तो हमारा लाभ उठा लेना है। (ऐसा वर्तन) दूसरोंको नहीं सुहाता फिर भी (मोक्षार्थीको ऐसा ही होता है कि), मुझे परिचय बढ़ाना नहीं है।

समाजमें बढ़ाना नहीं है, सगे-संबंधियोंमें बढ़ाना नहीं है और वैसे भी ये परिचय बढ़ानेमें पर पचड़ेके अलावा दूसरा होता भी क्या है? ये तो कहिये! जहाँ ज्यादा लोग इकट्ठे होते हो या किसीको भी आप मिलोगे तो आपको समाचार सुनने मिलेंगे। और खुद जैसे information bureau खोलकर बैठा न हो! दूसरेका जाननेकी उत्सुकता होती है, इसका क्या और उसका क्या? फलानेका क्या? कुछ लेना-देना न हो तो भी कुतुहलवृत्ति - जाननेकी इच्छा (रहा करती है)।

मुमुक्षु :- भाईश्री! जो (आत्मकल्याणका) एकलक्षी हो उसका संग तो अधिक करना चाहिये न?

पूज्य भाईश्री :- एकलक्षी माने जो आत्मकल्याणकी भावनावाला मोक्षार्थीजीव हो उसका परिचय करना। उसका परिचय करनेका मना नहीं है। संसारियोंका परिचय नहीं करना। क्योंकि (मान लीजिये किसीके वहाँ) शादीका प्रसंग आया, (वह ऐसा कहे) 'हमारे वहाँ पार्टी रखी है, इस वजहसे दावत रखी है' (इसलिये उस वक्त) सबको मिलना-झुलना हो, अच्छा-अच्छा खानेको मिले, उस निमित्तसे अच्छे कपड़े पहनना हो, उस निमित्तसे अपना दिखाव बढ़िया हो - ऐसे-ऐसे अंदरमें कितने ही कारण चलते हैं। ये सारे दरवाजे बंद हो जाये। कहीं दिखना नहीं है। (इसमें) सब दरवाजे बंद हो जाये। तब ही उसे अपना (अंदरका) काम करनेका अवकाश रहता है। वरना ऐसे प्रसंगमें जानेसे परिणाममें विक्षेप हो जाता है। इतना अधिक विक्षेप हो जाता है कि, उसे खुदको मालूम नहीं रहता कि, मैंने मेरा कितना बिगाड़ दिया! अब मेरी गाड़ी पटरी पर चढ़नेमें कितनी मुश्किलें आएगी! ये कुछ मालूम नहीं रहता और (अपने परिणामको) विक्षिप्त कर देता है। इसलिए **'अल्प परिचयी होना,...'** (ऐसा कहा है)। जिसको जैसा लगना है सो लगे। मैं अब मेरे काममें लगा हूँ। मुझे मेरा काम एकबार कर लेना है, वरना अचानक यहाँसे जाना पड़ेगा तब मेरा काम रह जायेगा।' (दूसरा) सब कुछ तो रह जायेगा ही, परंतु ये काम रह जायेगा इसका क्या? आखीरमें तो सब बिखर ही जानेवाले हैं।

अल्प परिचयी होनेके लिये, **'अल्पसत्कारी होना,...'** (यानी कि) जैसे खुदको हर जगह नहीं जाना है वैसे सबको इकट्ठा भी नहीं करना है। ठीक है, अगर कोई अचानक आ जाये और हम हमारे गृहस्थीके योग्य व्यवहार करे, यह बात अलग है; परंतु 'आप क्यों नहीं आते हैं? आप आईयेगा और जरूर आईयेगा, क्यों नहीं आये? हमें बुरा लगेगा। आप नहीं आते हैं इसका हमें बुरा लगता है' - ये सब तो छोड़ ही देना। कोई अगर न आये तो बुरा लगानेका सवाल नहीं रहता। क्योंकि उसमें नुकसान नहीं परंतु लाभ ही है। द्रव्यसे और भावसे दोनों प्रकारसे (लाभ ही है)। अत: **'अल्पसत्कारी होना,...'**

(कई लोग तो) बाहरगाँव होते हैं तो ऐसे ही पत्र लिखते हैं कि, 'बहुत समयसे आप नहीं आये, तो जरूर आईयेगा। ऐसी-वैसी काफी बातें लिखते हैं। लेकिन भाई! क्या काम है तुझे? तुझे तेरा काम है कि नहीं? लेकिन क्या करे दिखाव अच्छा करना हो, आबरू-कीर्तिका मोह हो, संबंधोंमें मिठास हो, फिर ऐसी ही प्रवृत्ति होगी न! और क्या होगा ?

(आगे कहते हैं) **'अल्पभावना बताना,...'** यानी कि बहुत आवकार नहीं देना, ऐसा कहते हैं। थोड़ा बुरा लगेगा कि, ये भाई ज्यादा आवकार नहीं देते, परंतु कोई बात नहीं। अब ये सारे संबंध गाढ़ नहीं करने हैं। अब तो इसकी जो प्रगाढ़ता हो चुकी है उसे छोड़नेकी बात है।

'अल्प सहचारी होना,...' (सहचारी होना माने)

साथमें रहना। लोगोंको कंपनी बिना नहीं चलता - ये सब ठीक नहीं है। मोक्षार्थी जीवोंका संग करो, सत्संग करो, इसमें कोई बाधा नहीं। परंतु संसारियोंका संग ज्यादा करने जैसा नहीं है। अत: कृपालुदेवने इन सारी प्रवृत्तियोंका निषेध किया है।

'अल्पगुरु होना,...' देखो! बहुत-सुंदर बात कही है! (कृपालुदेवने ऐसा कहा है कि), उपदेश नहीं देना। थोड़ा-बहुत खुद समझा हो तो दूसरेको समझानेकी मेहनत नहीं करना। (मुमुक्षुको तो ऐसा ही लगता है कि), मेरा बहुत काम बाकी है। कोई समझनेके लिये आये तो उसे दूसरेको सौंप देना कि, मेरेसे ज्यादा वे समझते हैं, आप वहाँ जाईये न! मेरा काम (समझानेका) नहीं है। मुझे (मेरा) बहुत काम बाकी है। (ऐसा होनेके) बजाय 'अधूरा घड़ा छलकता है' वैसे अभी तो थोड़ा समझा हो कि, दूसरेको समझानेमें लग जाता है! अभी तो खुद कल तक समझनेके लिये प्रश्न पूछता था और आज दूसरे प्रश्न पूछनेवालेको जवाब देने लग जाता है। ये सब नुकसानका व्यापार है। इसलिये ऐसा भी नहीं करना।

'...परिणामका विचार करना, यही श्रेयस्कर है।' इसका परिणाम क्या? इसका फल क्या? मुझे मुक्त होना है, मुझे अब बंधनमें नहीं आना है - ये परिणाम कैसे आये? (वैसे) परिणामका विचार करना। बंधनके परिणाम, मुक्त होनेके परिणामका (विचार करना)। परिणाम माने फल। फलका विचार करना। अपने परिणामोंके फलका विचार करना, ऐसा कहते हैं। यही कल्याणकारी है। **'...श्रेयस्कर है।'** अर्थात् कल्याणकारी है।

एक छ: पंक्तिके पोस्टकार्डमें कितनी सारी बातें भर दी हैं!! कितनी सारी बातें भर दी हैं! समय हुआ है, यहाँ तक रखते हैं।

*

करुणासागर 'पूज्य भाईश्री शशीभाई' के ९२वीं जन्म-जयंती महोत्सव पर धार्मिक कार्यक्रम

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई का आगामी ९२वीं जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-३, दि. ०४-१२-२०२४ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. ०८-१२-२०२४ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. ०७-१२-२०२४ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु निम्नलिखित पते पर पहुँचने की तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क: श्री राजेन्द्र जैन, मो. ९८२५१५५०६६

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चौक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

'लोकदृष्टि' - एक क़ातिल ज़हर

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

लोकदृष्टि अर्थात् लोगोंकी नज़रमें खुदका दिखाव अपनी कल्पनानुसार निश्चित किये हुए प्रकारका होना चाहिये, रहना चाहिये - ऐसा अभिप्राय और ऐसा प्रयत्न करना, ऐसी सावधानी निरंतर रहे ऐसा ज्ञानीको नहीं होता अतः ऐसा प्रकार जब हमारे खयालमें आये तब, जो कि अज्ञानदशामें ऐसा धारावाहीरूपसे होता ही है, परंतु हमारे ख़यालमें जब आये तब अपना ऐसा प्रकार कैसे मिटे, इसके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।

जैसे मानों दान देनेका भाव आया, दान देनेका एक दृष्टांत लेते हैं। दान देनेका भाव आता है और दान देनेसे अन्योंको भी पता चलता है कि, हमने इतना बड़ा दान दिया! अब यदि साथ ही साथ ऐसा भाव रहता हो कि, लोग मुझे 'बड़ा दानवीर हूँ' इस नज़रियेसे देखेंगे, तो आत्मार्थीको ऐसी प्रवृत्तिमें आगे नहीं जाना चाहिये।

ठीक वैसे कहींपर मानका विषय हो, मान मिलता हो और खुदको ऐसी लोकदृष्टि रहा करती हो कि 'सब लोग मुझे मान देवें' तो ऐसे स्थान, ऐसे प्रसंगोंसे दूर रहना, दूर भागना और इसके लिये आत्मार्थीको उद्यमवंत रहना चाहिये लोकदृष्टिको लेकर जहाँ-जहाँ खुदको नुकसान होनेका भय स्थान हो तो ऐसे स्थानको छोड़ देना या ऐसे स्थानसे दूर ही रहनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये जागृत रहना; वरना लोकदृष्टि जैसा ज़हर और कोई नहीं! बहुत क़ातिल ज़हर है!! कालकूट ज़हर है, तीव्रतम ज़हर हैं - ऐसा कहना उचित होगा। आत्माको मार्गप्राप्ति होनेमें या आनंद अमृतका स्वाद लेनेके सामने ज़हररूप साबित होता है।

मुमुक्षु : खुदको होंशियार समझनेवाले खुशी-खुशी यहाँ फँसतें हैं।

पूज्य भाईश्री : कोई खुदको ऐसा माने इससे क्या हो गया? कर्म किसीकी शर्म रखते हैं क्या? दूसरे जीवोंके समझने नहीं समझनेसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। हमारे दोषका किसी दूसरेको पता चले या नहीं भी चले परंतु कर्मका तो ऐसा सहज स्वभाव है कि, जैसे ही दोषका परिणमन हुआ (कि) आस्त्रवबंध हुए बिना रहते नहीं। इन्हें इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र कोई रोकनेमें समर्थ नहीं। स्वयं जिनेन्द्र नहीं रोक सकते! वहाँ दूसरा कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न : फिर दान देना बंद कर दें या लोकदृष्टिका त्याग करके दान देना?

समाधान : लोकदृष्टिका त्याग करना। दान देनेका त्याग करनेका सवाल नहीं है परंतु लोकदृष्टि छोड़ देना। मुद्दा तो लोकदृष्टिका त्याग करनेका है। लोकदृष्टिमें क्या है कि, लोगोंकी नज़रमें खुद मुखिया बनता है तो ऐसी मुख्यताको छोड़ देनी चाहिये। गुप्त रहकर करो, दान देना हो तो गुप्त रहकर करो।

इसतरह आत्मसाधन करते हुए अगर बाह्य प्रतिष्ठा मिलती हो और आपको इससे बचना हो तो अपना कार्य गुप्त रहकर करना, स्वकार्यको गुप्त रहकर करना। इसकी प्रसिद्धि न हो इसकी सावधानी रखना, ऐसा प्रकार है। खुदको नुकसानसे कैसे बचना? यह तो समझमें आता ही है। जिसको नुकसानसे बचना हो उसे

समझमें आ जाता है। इसके बावजूद भी ज्ञानी निष्कारण करुणासे कहते हैं कि, ऐसा करो! ऐसा करो! अनेक प्रकारसे उपदेश देते हैं।

प्रश्न : ज्ञानीके अलावा किसी भी अन्य जीवकी प्रशंसा करना लोकदृष्टिमें जाता है क्या?

समाधान : इसके पीछे अभिप्राय क्या है यह समझना पड़े। ज्ञानीकी प्रशंसा तो पूज्यताकी दृष्टिसे की जाती है। ऐसी पूज्यताकी दृष्टि तो नहीं रहनी चाहिये। जिन्हें ज्ञानदशा न वर्तती हो उनके प्रति आम लौकिक शिष्टाचार होना अलग विषय है और धर्मदृष्टिसे पूज्यता, धर्मदृष्टिसे बहुमान होना यह दूसरा विषय है। दोनों भिन्न-भिन्न विषय हैं। दोनोंको यथास्थानमें रखना चाहिये - इसका नाम विवेक है।

(प्रवचनांश...श्री 'बहिनश्रीके वचनामृत' दिनांक ०८-११-८६, वचनामृत - ३,४, प्रवचन क्र.- ०३, ०३ मिनट पर)

विनम्र अपील

" स्वानुभूतिप्रकाश" मासिक पत्रिका पिछले २५ सालोंसे पूज्य भाईश्री शशीभाई की प्रेरणासे हिन्दी एवं गुजरातीमें मुमुक्षुओंको भेट दी जाती है। जिसमें किसी न किसी पात्र जीवके आत्मकल्याणकी एकमात्र विशाल भावना निहित है।

यदि इस पत्रिका का आपके वहाँ या आपके आसपासके समुदायमें सद्उपयोग न होता हो अथवा संभवित अविनय या अशातना होती नज़र आये तो हमें इसकी जानकारी अवश्य दें या फिर आप पत्रिका एड्रेस समेत हमें वापिस भेज सकते हैं, ताकि हम उसे भेजना बंद कर सके। ट्रस्टकी इस व्यवस्थामें आपका सहयोग अपेक्षित है।

आभार

संपर्क: श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट श्री नीरव वोरा मो: ९८२५०५२९१३

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं हिन्दी भाषा के Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचन अभी चल रहे हैं। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

आवश्यक सूचना

स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको (e-copy) - pdf. की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करे।

श्री नीरव वोरा - ९८२५०५२९१३

पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा
मंगलवाणी-सीडी-१४-C

मुमुक्षु :- दूसरी जगह लिखा कि सामायिक में..

समाधान :- .. सामायिक होती है। अंतर की सामायिक, वह सामायिक तो अलग होती है। वह भी उसमें लिखा है। सामायिक यानी उस वक्त वैसी रूढ़ि थी। एक घण्टा बैठे, सामायिक करे तो उठना नहीं पड़े। इसलिये सामायिक में ऐसा लिखा है। उस वक्त बाहरसे सामायिक में बैठने की स्थानकवासी में रूढ़ि होती है वह, ऐसे सामायिक लिखा है। यानी कब निज स्वरूप अनुभव में आया, ऐसे। अंतर में सामायिक होती है वह अलग है, जो स्वानुभूति की सामायिक होती है वह अलग है। यह तो बाहरसे निवृत्ति में बैठे हो वह। एक घण्टे तक कहीं बैठना नहीं है, कहीं जाना नहीं है। स्थानकवासी संप्रदाय में वैसा होता है। उस वक्त तो बाहर में वह सब था न। उस वक्त ख्याल में था कि यह सब बाहर की सामायिक है। परन्तु लिखने में ऐसे लिखा है।

मुमुक्षु :- माताजी! अज्ञानी को क्रोध का उदय आये तो उस पापसे बचने को दबाने का प्रयत्न करता है, तो ज्ञानी किसप्रकार करते हैं?

समाधान :- ज्ञायक की परिणति में वह शान्ति रखे। मैं तो शांतस्वरूपी हूँ। ज्ञायक की डोर उसे क्रोधसे वापस खींच लेती है। क्रोध में मर्यादा के बाहर नहीं जाता। भेदज्ञान ऐसा है कि क्रोध में एकत्व नहीं होता। क्रोधसे भिन्न रहता है। भेदज्ञान की धारा वर्तती है।

मुमुक्षु :- उपयोग तो क्रोध में है।

समाधान :- उपयोग भले ही क्रोध में हो, परन्तु ज्ञायक की डोर चालू ही है, उसमें एकत्व नहीं होता।

मुमुक्षु :- उपयोग को वापस मोड़ने का प्रयत्न करे?

समाधान :- उपयोग को वापस मोड़ने का प्रयत्न करता है। परिणति तो भिन्न ही है। लेकिन उपयोग भी अधिक बाहर नहीं जाता और वापस आता है, सहजरूपसे। उसे तो भेदज्ञान की धारा वर्तती है। उसकी विरक्ति की परिणति (चालू है)। ज्ञायक उसके हाथ में है। अन्दर परिणति भिन्न परिणमती है। उसकी स्थिरता, लीनता, शांतता अमुक अंश में छूटता ही नहीं, बाहरसे कुछ भी दिखाई दे तो भी। क्रोध में वैसा हो नहीं जाता, एकदम आकुलव्याकुल नहीं हो जाता।

*

'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में से 'प्रमाणका विषय' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीके चयन किये गये वचनामृत

निर्विकल्प होते ही अपनेमें से ही एक ज्ञान उघड़ता है जो दोनों (सामान्य-विशेष) पड़खोंको सहज जान लेता है, उसीको प्रमाणज्ञान कहते हैं। (३)

*

'परिणाम' और 'त्रिकाल अपरिणामी' - दो मिलकर ही पूर्ण एक वस्तु है, जो प्रमाणका विषय है। वेदांतादि तो केवल निष्क्रिय...निष्क्रिय कहते हैं, वे परिणामको ही नहीं मानते हैं; तो निष्क्रिय भी जैसा है वैसा तो उनकी मान्यतामें भी नहीं आता। यहाँ तो परिणामको गौण करके निष्क्रिय कहा जाता है। (४)

*

एक चक्रके अनेक पासे (पहल) हैं, सभी पासे अलग-अलग ड़िजाइनके हैं। जब किसी एक पासेकी बात चलती हो तब दूसरे पासेकी बात नहीं समझनी चाहिए। ऐसे वस्तुके अनेक धर्मोंमें से भिन्न-भिन्न धर्मोंकी बात चलती हो, तब एकको दूसरेमें मिलाकर, घोटाला नहीं करना चाहिए। (५)

*

अपने द्रव्यमें दृष्टि तादात्म्य होते ही ज्ञान प्रमाण हो जाता है; तब ज्ञान (अन्य) सभी बातें (यथार्थरूप से) जान लेता है। (४३)

*

प्रश्न :- जम जाना भी तो पर्याय ही है न?

उत्तर :- अरे भाई! आखिर कार्य तो सब परिणाममें ही आयेगा। परिणामसे घबराओ मत, लेकिन परिणामपर खड़े भी मत रहो। कार्य तो परिणाममें ही आता है। अपरिणामीमें जम गया (स्थिर हो गया) तो कार्य तो परिणाममें ही आयेगा और वेदन भी पर्यायका ही होगा। 'अपरिणामी' 'परिणाम' दो अंश मिलकर पूरी (प्रमाणज्ञानकी विषयभूत) वस्तु है। (१८७)

*

(द्रव्यका) शुद्धपर्यायके साथ व्याप्य-व्यापक संबंध पूरे द्रव्यके क्षेत्रके हिसाबसे (प्रमाणसे) है। (सामान्य, विशेषरूप नहीं हो जाता है।) (५२०)

*

अपने द्रव्यमें दृष्टिका तादात्म्य होते ही ज्ञान प्रमाण हो जाता है। ऐसे प्रमाण हुआ ज्ञान सभी बातें जान लेता है। (अपनी आंशिक शुद्धि, अशुद्धि और इनके निमित्त आदि सभीको प्रमाणज्ञान जान लेता है।) (५२४)

*

प्रमाणसे द्रव्य पर्यायका कर्ता है। निश्चयसे (त्रिकाली) द्रव्य पर्यायका कर्ता नहीं है। (६०७)

*

क्षमापना

हे भगवन्! मैं बहुत भूल गया, मैंने आपके अमूल्य वचनोंको ध्यानमें लिया नहीं। आपके कहे हुए अनुपम तत्त्वोंका मैंने विचार किया नहीं। आपके प्रणीत किये हुए उत्तम शीलका सेवन किया नहीं। आपकी कही हुई दया, शांति, क्षमा और पवित्रताको मैंने पहचाना नहीं। हे भगवन्! मैं भूला, भटका, घूमा-फिरा और अनंत संसारकी विडंबनामें पड़ा हूँ। मैं पापी हूँ। मैं बहुत मदोन्मत्त और कर्मरजसे मलिन हूँ। हे परमात्मन्! आपके कहे हुए तत्त्वोंके बिना मेरा मोक्ष नहीं। मैं निरंतर प्रपंचमें पड़ा हूँ। अज्ञानसे अंध हुआ हूँ, मुझमें विवेकशक्ति नहीं है और मैं मूढ़ हूँ, मैं निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ। नीरागी परमात्मन्! मैं अब आपकी, आपके धर्मकी और आपके मुनियोंकी शरण लेता हूँ। मेरे अपराधोंका क्षय होकर मैं उन सब पापोंसे मुक्त होऊँ यह मेरी अभिलाषा है। पूर्वकृत पापोंका मैं अब पश्चात्ताप करता हूँ। ज्यों-ज्यों मैं सूक्ष्म विचारसे गहरा उतरता हूँ त्यों-त्यों आपके तत्त्वोंके चमत्कार मेरे स्वरूपका प्रकाश करते हैं। आप निरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरूप, सहजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी और त्रैलोक्यप्रकाशक हैं। मैं मात्र अपने हितके लिये आपकी साक्षीमें क्षमा चाहता हूँ। एक पल भी आपके कहे हुए तत्त्वोंकी शंका न हो, आपके बताये हुए मार्गमें अहोरात्र मैं रहूँ, यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति हो! हे सर्वज्ञ भगवन्! आपसे मैं विशेष क्या कहूँ? आपसे कुछ अज्ञात नहीं है। मात्र पश्चातापसे मैं कर्मजन्य पापकी क्षमा चाहता हूँ। - ॐ शांतिः शांतिःशांतिः।

* ('श्रीमद् राजचंद्र' शिक्षापाठ-५६)

क्षमापना

आज दिन पर्यंत वीतराग देव-गुरु-शास्त्र प्रति या किसी भी जीव के प्रति जो कुछ भी अविनय और आशातना के परिणाम हुए हों उनकी शुद्ध अंतःकरणपूर्वक क्षमा याचते हैं। वीतराग देव-गुरु-शास्त्र एवं वीतराग आप्त पुरुष द्वारा बोधित परमतत्त्व के प्रति सदा शरणागतरूप से रहें यही भावना आज के दिन भाते हैं।

- 'स्वानुभूतिप्रकाश' परिवार

कहान रत्नसागरके अनमोल मोती.....

भाई! इस समय तो अपना कार्य कर लेने जैसा है। अरे! माँ-बाप, भाई-बहिन, सगे-संबंधी आदि मरकर कहाँ गये होंगे? उसकी कोई खबर है? अरे! मुझे अपने आत्माका हित कर लेना है - ऐसा उसे अंतरसे लगना चाहिए। अहाहा! सगे-संबंधी सब चले गये, उनके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भव सब फिर गये। शरीरके अनंत रजकण कब कहाँ क्या होंगे उसकी खबर है? इसलिये जो जागता रहेगा वह बचेगा। (९४)

*

बालकसे लेकर वृद्ध तक सबको अर्थात् अज्ञानीको सदा स्वयं अनुभूतिस्वरूप भगवानआत्मा ही अनुभवमें आता है, वर्तमान ज्ञानकी जो वर्तमान पर्याय है, अज्ञानीके भी जो विकासरूप भावेन्द्रियकी खंड-खंड ज्ञानरूप पर्याय है उसमें आत्मा ही अनुभवमें अता है, क्योंकि उस पर्यायमें स्व-परप्रकाशक शक्ति है, इसलिए उसमें स्वज्ञेय ही ज्ञात होता है। बालकसे लेकर वृद्ध तक सबको, ज्ञानकी पर्यायका स्वभाव स्व-परप्रकाशक होनेसे, अज्ञानीको भी उसकी ज्ञान पर्यायमें आत्माका ही अनुभव होता है। अनुभूतिस्वरूप भगवानआत्मा बालगोपाल सर्वको सदाकाल स्वयं अनुभवमें आता है। पर्यायमें आत्मा ही खयालमें आता है। परमात्मा कहते हैं कि प्रभु! तेरे ज्ञानकी पर्यायमे सदा स्वयं आत्मा ही अनुभवमें आता है। ज्ञानकी प्रगट पर्यायमें सबको भगवानआत्मा अनुभवमें आता है। (१०५)

*

('द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर'में से साभार उद्धृत)

नया प्रकाशन (सिर्फ गुजराती भाषामें)

'अध्यात्म पिपासा' (भाग-५)

प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चाका ग्रंथ 'स्वानुभूतिदर्शन' पर अध्यात्मयोगी पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचनों की श्रृंखला 'अध्यात्म पिपासा' भाग-५ (केवल गुजरातीमें) पूज्य भाईश्री की ९२वीं जन्म जयंतिके अवसर पर दि : ०८-१२-२४ को प्रकाशित किया जायेगा। जो मुमुक्षु गुजराती भाषा से परिचित हैं और इसके स्वाध्याय के लिये इच्छुक हों वे अपनी प्रत दिः ३०-११-२४ तक रजिस्टर करवा लें।

- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा ९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3705**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001